काशी
शास्त्रार्थः
९.५

* ओं खम्ब्रह्म *

काशीशास्त्रार्थः

•

अर्थात्

जो सम्वत् १९२६ में स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी

और

काशी के स्वामी विशुद्धानन्दजी, बालशास्त्री

आदि पण्डितों के बीच दुर्गाकुण्ड

के

समीप आनन्दबाग़

में हुआ था.

•

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

में प्रकाशित हुआ.

•

दयानन्दजन्माब्द १४५

तेरहवीं वार. ५००० प्रति. | सम्वत् २०२६ वि० | मूल्य २० न. पै.

काशी शास्त्रार्थ : शताब्दी संस्करण

आर्य जगत को यह सहर्ष सूचित किया जाता है कि इस वर्ष काशी शास्त्रार्थ की प्रथम शताब्दी के उपलक्ष्य में परोपकारिणी सभा, अजमेर काशी शास्त्रार्थ' का विशिष्ट संस्करण प्रकाशित कर रही है। इस संस्करण में तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित शास्त्रार्थ विषयक टिप्पणियाँ परिशिष्ट रूप में प्रकाशित की गई हैं। साथ ही शास्त्रार्थ में उपस्थित सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा लिखित एवं प्रत्नकम्र नन्दिनी नामक मासिक पत्रिका में प्रकाशित शास्त्रार्थ का संस्कृत विवरण भी इस संस्करण की एक विशेषता है। मुन्शी बख्तावरसिंह सम्पादित आर्यदर्पण के पुराने अंकों से शास्त्रार्थ विषयक दुर्लभ सामग्री संगृहीत की गई है। परिशिष्ट भाग का सम्पादन एवं सामग्री का चयन आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० भवानीलालजी भारतीय, हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट कालेज, अजमेर ने किया है। शास्त्रार्थ का मूल पाठ वही रक्खा गया है जो वैदिक यन्त्रालय काशी के प्रथम संस्करण में प्रकाशित हुआ था। आशा है आर्य जनता इस संस्करण से लाभान्वित होगी।

निवेदक :

ऋषि निर्वाणोत्सव
अजमेर
कार्तिक कृष्णा अमावस सम्वत् २०२६,
ता० ६-११-१९६९

मन्त्री
परोपकारिणी सभा, अजमेर
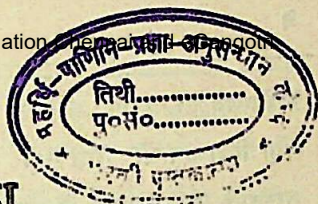
भूमिका

हम पाठकों को इस काशी के शास्त्रार्थ का (जो कि संवत् १६२६ मि० कार्तिक सुदि १२ मङ्गलवार के दिन "स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी" का काशीस्थ 'स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती' तथा 'बालशास्त्री' आदि पण्डितों के साथ हुआ था) तात्पर्य सहज में प्रकाशित होने के लिये विदित करता हूं।

इस संवाद में स्वामीजी का पक्ष पाषाणमूर्तिपूजनादिखण्डनविषय और काशीवासी पण्डितजनों का मण्डन विषय था, उनको वेदप्रमाण से मण्डन करना उचित था सो कुछ भी न कर सके, क्योंकि जो कोई भी पाषाणादिमूर्तिपूजनादि में वैदिक प्रमाण होता तो क्यों न कहते और स्वपक्ष को वैदिक प्रमाणों से सिद्ध किये विना वेदों को छोड़ कर अन्य मनुस्मृति आदि ग्रन्थ वेदों के अनुकूल हैं वा नहीं, इस प्रकरणान्तर में क्यों जा गिरते ? क्योंकि जो पूर्व प्रतिज्ञा को छोड़ के प्रकरणान्तर में जाना है वही पराजय का स्थान है, ऐसे हुए पश्चात् भी जिस २ ग्रन्थान्तर में से जो २ पुराण आदि शब्दों से ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थों को सिद्ध करने लगे थे सो भी सिद्ध न कर सके, पश्चात् प्रतिमा शब्द से मूर्त्तिपूजा को सिद्ध करना चाहा था वह भी न हो सका, पुनः पुराण शब्द विशेष्य वा विशेषणवाची है इस में स्वामीजी का पक्ष विशेषण-वाची और काशीस्थ पण्डितों का पक्ष विशेष्यवाची सिद्ध करना था, इसमें बहुत इधर उधर के वचन बोले परन्तु सर्वत्र स्वामीजी ने

विशेषणवाची, पुराण शब्द को सिद्ध कर दिया और काशीस्थ पण्डित लोग विशेष्यवाची सिद्ध नहीं कर सकें। सो आप लोग देखिये कि शास्त्रार्थ की इन बातों से क्या ठीक २ विदित होता है ?

और भी देखने की बात है कि जब माधवाचार्य्य दो पत्रे निकाल के सबके सामने पटक के बोले थे कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है उस पर स्वामीजी ने उस को विशेषणवाची सिद्ध कर दिया परन्तु काशी निवासी पण्डितों से कुछ भी न बन पड़ा, एक बड़ी शोचनीय यह बात उन्होंने की, जो किसी सभ्य मनुष्य के करने योग्य न थी कि ये लोग सभा में काशीराज महाराज और काशीस्थ विद्वानों के सन्मुख असभ्यता का वचन बोले। क्या स्वामीजी के कहने पर भी काशीराज आदि चुप होके बैठे रहें और बुरे वचन बोलने वालों को न रोकें ? क्या स्वामीजी का पांच मिनिट दो पत्रों के देखने में लगा के प्रत्युत्तर देना विद्वानों की बात नहीं थी ? और क्या सब से बुरी बात यह नहीं थी कि सब सभा के बीच ताली शब्द लड़कों सदृश किया और ऐसे महा असभ्यता के व्यवहार करने में कोई भी उन को रोकने वाला न हुआ ? और क्या एक दम उठ के चुप होके बगीचे से बाहर निकल जाना और क्या सभा में वा अन्यत्र झूठा हल्ला करना धार्मिक और विद्वानों के आचरण से विरुद्ध नहीं था ?

यह तो हुआ सो हुआ परन्तु एक महा खोटा काम उन्होंने और किया जो सभा के व्यवहार से अत्यन्त विरुद्ध है कि एक पुस्तक स्वामीजी की झूठी निन्दा के लिये काशीराज के छापेखाने में छपाकर प्रसिद्ध किया और चाहा कि उनकी बदनामी करें और करावें परन्तु

इतनी झूठी चेष्टा किये पर भी स्वामीजी उनके कर्मों पर ध्यान न देकर वा उपेक्षा करके पुनरपि उनको वेदोक्त उपदेश प्रीति से आज तक बराबर करते ही जाते हैं, और उक्त २६ के संवत् से लेके अब संवत् १९३७ तक छठी वार काशीजी में आके सदा विज्ञापन लगाते जाते हैं कि पुनरपि जो कुछ आप लोगों ने वैदिक प्रमाण वा कोई युक्ति पाषाणादि मूर्त्तिपूजा आदि के सिद्ध करने के लिए पाई हो तो सभ्यतापूर्वक सभा करके फिर भी कुछ कहो वा सुनो, इस पर भी कुछ नहीं करते, यह भी कितने निश्चय करने की बात है। परन्तु ठीक है कि जो कोई दृढ़ प्रमाण वा युक्ति काशीस्थ पण्डित लोग पाते अथवा कहीं वेदशास्त्र में प्रमाण होता तो क्या सन्मुख होके अपने पक्ष को सिद्ध करने न लगते और स्वामीजी के सामने न होते ?

इस से यही निश्चित सिद्धान्त जानना चाहिये कि जो इस विषय में स्वामीजी की बात है वही ठीक है। और देखो स्वामीजी की यह बात संवत् १९३६ के विज्ञापन से भी कि जिस में सभा के होने के अत्युत्तम नियम छपवा के प्रसिद्ध किये थे सत्य ठहरती है।

उस पर पण्डित ताराचरण भट्टाचार्य्य ने अनर्थयुक्त विज्ञापन छपवा के प्रसिद्ध किया था, उस पर स्वामीजी के अभिप्राय से युक्त दूसरा विज्ञापन उस के उत्तर में पण्डित भीमसेन शर्मा ने छपवा कर कि जिसमें स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वतीजी और बालशास्त्रीजी से शास्त्रार्थ होने की सूचना थी प्रसिद्ध किया था, उस पर दोनों में से कोई एक भी शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त न हुआ, क्या अब भी किसी को शङ्का रह सकती है कि जो २ स्वामीजी कहते हैं वह २ सत्य है वा नहीं ?

किन्तु निश्चय करके जानना चाहिए कि स्वामीजी की सब बातें वेद और युक्ति के अनुकूल होने से सर्वथा सत्य ही हैं। और जहाँ छान्दोग्य उपनिषद आदि को स्वामीजी ने वेद नाम से कहा है वहाँ २ उन पण्डितों के मत के अनुसार कहा है किन्तु ऐसा स्वामीजी का मत नहीं, स्वामीजी मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मानते हैं, क्योंकि जो मन्त्रसंहिता हैं, वे ईश्वरोक्त होने से निर्भ्रान्त सत्यार्थयुक्त हैं और ब्राह्मणग्रन्थ जीवोक्त अर्थात् ऋषि मुनि आदि विद्वानों के कहे हैं वे भी प्रमाण तो हैं परन्तु वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण हो भी सकते हैं, और मंत्रसंहिता तो किसी के विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण कभी नहीं हो सकती, क्योंकि वे [द] तो स्वतःप्रमाण हैं ।।

संवत् १९३७
सन् १८८०

प्रबन्धकर्ता, वैदिक यंत्रालय.
काशी

अथ काशी-शास्त्रार्थः

धर्माधर्मयोर्मध्ये शास्त्रार्थविचारो विदितो भवतु । एको दिगम्बरस्सत्यशास्त्रार्थविद्दयानन्दसरस्वती स्वामी गङ्गातटे विहरति । स ऋग्वेदादिसत्यशास्त्रेभ्यो निश्चयं कृत्वैवं वदति–"वेदेषु पाषाणादिमूर्त्तिपूजनविधानं शैवशाक्तगाणपत-वैष्णवादिसम्प्रदाया रुद्राक्षत्रिपुंड्रादिधारणं च नास्त्येव । तस्मादेतत् सर्वं मिथ्यैवास्ति, नाचरणीयं कदाचित् । कुतः ? एतत् वेदविरुद्धाप्रसिद्धाचरणे महत्पापं भवतीतीयं वेदादिषु मर्यादा लिखितास्ति ।"

एक दयानन्द सरस्वती नामक संन्यासी दिगम्बर गङ्गा के तीर विचरते रहते हैं, जो सत्पुरुष और सत्यशास्त्रों के वेत्ता हैं। उन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेदादि का विचार किया है, सो ऐसा सत्य-शास्त्रों को देख निश्चय करके कहते हैं कि "पाषाणादि मूर्त्तिपूजन, शैव, शाक्त, गाणपत और वैष्णव आदि संप्रदायों और रुद्राक्ष, तुलसी माला, त्रिपुण्ड्रादि धारण का विधान कहीं भी वेदों में नहीं है, इससे ये सब मिथ्या ही हैं, कदापि इनका आचरण न करना चाहिए। क्योंकि वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध के आचरण से बड़ा पाप होता है, ऐसी मर्यादा वेदों में लिखी है।"

एवं हरद्वारमारभ्य गङ्गातटे अन्यत्रापि यत्र कुत्रचित् दयानन्दसरस्वती स्वामी खण्डनं कुर्वन् सन् काशीमागत्य दुर्गाकुण्डसमीप आनन्दारामे यदा स्थितिं कृतवान् तदा काशीनगरे महान् कोलाहलो जातः। बहुभिः पण्डितैर्वेदादिपुस्तकानां मध्ये विचारः कृतः, परन्तु क्वापि पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादि विधानं न लब्धम्।

इस हेतु से उक्त स्वामीजी हरिद्वार से लेकर सर्वत्र इसका खण्डन करते हुए काशी में आके दुर्गाकुण्ड के समीप आनन्दबाग़ में स्थित हुए। उनके आने की धूम मची, बहुत से पण्डितों ने वेदों के पुस्तकों में विचार करना आरम्भ किया, परन्तु पाषाणादि मूर्त्तिपूजा का विधान कहीं भी किसी को न मिला।

प्रायेण बहूनां षाषाणपूजनादिष्वाग्रहो महानस्ति, अतः काशीराजमहाराजेन बहून् पण्डितानाहूय पृष्टं किं कर्त्तव्यमिति? तदा सर्वैर्जनैर्निश्चयः कृतो येन केन प्रकारेण दयानन्दस्वामिना सह शास्त्रार्थं कृत्वा बहुकालात् प्रवृत्तस्याचारस्य स्थापनं यथा भवेत् तथा कर्त्तव्यमेवेति।

बहुधा करके इसके पूजन में आग्रह बहुतों को है। इससे काशीराज महाराज ने बहुत से पण्डितों को बुलाकर पूछा कि इस विषय में क्या करना चाहिये? तब सब ने ऐसा निश्चय करके कहा कि किसी प्रकार से दयानन्द सरस्वती स्वामी के

साथ शास्त्रार्थ करके वहुकाल से प्रवृत्त आचार को जैसे स्थापन हो सके करना चाहिये ।

पुनः कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यामेकोनविंशतिशतषड्विंशतितमे संवत्सरे (१६२६) मङ्गलवासरे महाराजः काशीनरेशो वहुभिः पण्डितैः सह शास्त्रार्थकरणार्थमानन्दारामं यत्र दयानन्दस्वामिना निवासः कृतः तत्रागतः ।

तदा दयानन्दस्वामिना महाराजं प्रत्युक्तम्—वेदानां पुस्तकान्यानीतानि न वा ?

निदान कार्तिक सुदी १२ सं० १६२६ मङ्गलवार को महाराज काशीनरेश वहुत से पण्डितों को साथ लेकर जब स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के हेतु आए तब दयानन्द स्वामीजी ने महाराज से पूछा कि आप वेदों की पुस्तक ले आए हैं वा नहीं ?

तदा महाराजेनोक्तम्—वेदाः पण्डितानां कण्ठस्थाः सन्ति किं प्रयोजनं पुस्तकानामिति ?

महाराज ने कहा कि वेद सम्पूर्ण पण्डितों को कण्ठस्थ हैं पुस्तकों का क्या प्रयोजन है ?

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—पुस्तकैर्विना पूर्वापरप्रकरणस्य यथावद्विचारस्तु न भवति ।

अस्तु तावत् पुस्तकानि नानीतानि ।

तब दयानन्द सरस्वतीजी ने कहा कि पुस्तकों के बिना पूर्वापर प्रकरण का विचार ठीक ठीक नहीं हो सकता, भलसक पुस्तक नहीं लाए तो नहीं सही परन्तु किस विषय पर विचार होगा ?

पण्डितों ने कहा कि तुम मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हो हम लोग उसका मण्डन करेंगे।

पुनः स्वामीजी ने कहा कि जो कोई आप लोगों में मुख्य हो वही एक पण्डित मुझ से संवाद करे।

तदा पण्डित रघुनाथप्रसादकोटपालेन नियमः कृतो दयानन्दस्वामिना सहैकैकः पण्डितो वदतु न तु युगपदिति।

पण्डित रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने यह नियम किया कि स्वामीजी से एक एक पण्डित विचार करे।

तदादौ ताराचरणनैयायिको विचारार्थमुद्यतः, तं प्रति स्वामिदयानन्देनोक्तम्—युष्माकं वेदानां प्रामाण्यं स्वीकृतमस्ति न वेति ?

पुनः सब से पहिले ताराचरण नैयायिक स्वामीजी से विचार के हेतु सम्मुख प्रवृत्त हुए।

स्वामीजी ने उन से पूछा कि आप वेदों का प्रमाण मानते हैं वा नहीं ?

तदा ताराचरणेनोक्तम्—सर्वेषां वर्णाश्रमस्थानां वेदेषु प्रामाण्यस्वीकारोऽस्तीति।

उन्होंने उत्तर दिया कि जो वर्णाश्रम में स्थित हैं उन सबको वेदों का प्रमाण ही है * ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदे पाषाणादि मूर्त्तिपूजनस्य यत्र प्रमाणं भवेत्तद्दर्शनीयम्, नास्ति चेद्वद नास्तीति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि कहीं वेदों में पाषाणादि मूर्त्तियों के पूजन का प्रमाण है वा नहीं ? यदि हो तो दिखाइये, और जो नहीं तो कहिये कि नहीं है ।

तदा ताराचरणभट्टाचार्येणोक्तम्—वेदेषु प्रमाणमस्ति वा नास्ति परन्तु वेदानामेव प्रामाण्यं नान्येषामिति यो ब्रूयात्तं प्रति किं वदेत ?

पण्डित ताराचरण ने कहा कि वेदों में प्रमाण है वा नहीं परन्तु जो एक वेदों ही का प्रमाण मानता है औरों का नहीं उसके प्रति क्या कहना चाहिये ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यो विचारस्तु पश्चाद् भविष्यति वेदविचार एव मुख्योऽस्ति तस्मात् स एवादौ कर्त्तव्यः, कुतो वेदोक्तकर्मैव मुख्यमस्त्यतः । मनुस्मृत्यादीन्यपि वेदमूलानि सन्ति तस्मात्तेषामपि प्रामाण्यमस्ति न तु वेदविरुद्धानां वेदाप्रसिद्धानां चेति ।

---

* इससे यह समझना कि स्वामीजी भी वर्णाश्रमस्थ हैं, वेदों को मानते हैं ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि औरों का विचार पीछे होगा, वेदों का विचार मुख्य है, इस निमित्त से इस का विचार पहिले ही करना चाहिये, क्योंकि वेदोक्त ही कर्म्म मुख्य है। और मनुस्मृति आदि भी वेदमूलक हैं इससे इनका भी प्रमाण है, क्योंकि जो जो वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध हैं उनका प्रमाण नहीं होता।

तदा ताराचरणभट्टाचार्येणोक्तम्—मनुस्मृतेः क्वास्ति वेदमूलमिति ?

पण्डित ताराचरण ने कहा कि मनुस्मृति का वेदों में कहां मूल है ?

स्वामिनोक्तम्—'यद्वै किंचन मनुरवदत्तद् भेषजं भेषजतायाः' इति सामवेदे* ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि जो जो मनुजी ने कहा है सो सो औषधों का भी औषध है, ऐसा सामवेद के ब्राह्मण में कहा है। ‡

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—रचनानुपपत्तेश्च नानुमानमित्यस्य व्याससूत्रस्य किं मूलमस्तीति ?

---

* पण्डितानामेव मतमङ्गीकृत्योक्तमतो नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम् ।

‡ यह कहना उन पण्डितों के मत के अनुसार ठीक है, परन्तु स्वामीजी तो ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते किन्तु मन्त्रभाग ही को वेद मानते हैं।

विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि रचना की अनुपपत्ति होने से अनुमान-प्रतिपाद्य प्रधान, जगत् का कारण नहीं व्यासजी के इस सूत्र का वेदों में क्या मूल है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्य प्रकरणस्योपरि विचारो न कर्त्तव्य इति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह प्रकरण से भिन्न बात है इस पर विचार करना न चाहिये ।

पुनर्विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वदैव त्वं यदि जानासीति ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि यदि तुम जानते हो तो अवश्य कहो ।

तदा दयानन्दस्वामिना प्रकरणान्तरे गमनम्भविष्यतीति मत्वा नेदमुक्तम् ।

कदाचित् कण्ठस्थं यस्य न भवेत् स पुस्तकं दृष्ट्वा वदेदिति ।

इस पर स्वामीजी ने यह समझ कर कि प्रकरणान्तर में वार्त्ता जा रहेगी, इससे न कहा जो कदाचित् किसी को कण्ठ न हो तो पुस्तक देखकर कहा जा सकता है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कण्ठस्थं नास्ति चेच्छास्त्रार्थं कर्तुं कथमुद्यतः काशीनगरे चेति ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो कण्ठस्थ नहीं है तो काशी नगर में शास्त्रार्थ करने को क्यों उद्यत हुए ?

तदा स्वामिनोक्तम्—भवतः सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि क्या आप को सब कण्ठाग्र है ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—मम सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि हां हम को [सब] कण्ठस्थ है ।

तदा स्वामिनोक्तम्—धर्मस्य किं स्वरूपमिति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि कहिये धर्म्म का क्या स्वरूप हैं ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्म इति ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो वेदप्रतिपाद्य फलसहित अर्थ है वही धर्म कहलाता है ।

स्वामिनोक्तम्—इदन्तु तव संस्कृतं नास्त्यास्य प्रामाण्यं कण्ठस्थां श्रुतिं स्मृतिं वा वदेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह आप का संस्कृत है इसका क्या प्रमाण, श्रुति स्मृति कहिये ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—"चोदनालक्षणार्थो धर्मः" इति जैमिनिसूत्रमिति ‡।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो चोदनालक्षण अर्थ है सो धर्म कहलाता है। यह जैमिनि का सूत्र है।

तदा स्वामिनोक्तम्—चोदना का, चोदना नाम प्रेरणा तत्रापि श्रुतिर्वा स्मृतिर्वक्तव्या यत्र प्रेरणा भवेत्।

स्वामीजी ने कहा कि यह सूत्र है, यहां श्रुति वा स्मृति को कण्ठ से क्यों नहीं कहते? और चोदना नाम प्रेरणा का है वहां भी श्रुति वा स्मृति कहना चाहिये जहां प्रेरणा होती है।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम्।

जब इसमें विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा।

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्तु तावद्धर्मस्वरूपप्रतिपादिका श्रुतिर्वा स्मृतिस्तु नोक्ता किं च धर्मस्य कति लक्षणानि भवन्ति वदतु भवानिति?

तब स्वामीजी ने कहा कि अच्छा आपने धर्म का स्वरूप तो न कहा परन्तु धर्म के कितने लक्षण हैं कहिये:?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—एकमेव लक्षणं धर्मस्येति।

---

‡ इदन्तु सूत्रमस्ति, नेयं श्रुतिर्वा स्मृतिः, सर्वं मम कण्ठस्थमस्तीति प्रतिज्ञायेदानीं कण्ठस्थं नोच्यत इति प्रतिज्ञाहानेस्तस्य कुतो न पराजय इति बोध्यम्।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि धर्म का एक ही लक्षण है।

तदा स्वामिनोक्तम्—किं च तदिति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि वह कैसा है ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—धर्मस्य तु दश लक्षणानि सन्ति भवता कथमुक्तमेकमेवेति ?

तब स्वामीजी ने कहा कि धर्म्म के तो दश लक्षण हैं, आप एक ही क्यों कहते हैं ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कानि तानि लक्षणानीति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि वे कौन से दश लक्षण हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

इति मनुस्मृतेः श्लोकोऽस्ति * ।

इस पर स्वामीजी ने मनुस्मृति का यह वचन कहा कि:—धैर्य्य १ क्षमा २ दम ३ चोरी का त्याग ४ शौच ५ इन्द्रियों का निग्रह ६ बुद्धि ७ विद्या का बढ़ाना ८ सत्य ९ और अक्रोध अर्थात्

* अत्रापि तस्य प्रतिज्ञाहानेर्निग्रहस्थानं बोध्यम् ।

क्रोध का त्याग १०, ये दश धर्म के लक्षण हैं, फिर आप कैसे एक ही लक्षण कहते हैं ?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—अहं सर्वं धर्म्मशास्त्रं पठितवानिति ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—त्वमधर्म्मस्य लक्षणानि वदेति ।

तब बालशास्त्री ने कहा कि हां हमने सब धर्मशास्त्र देखा है ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि आप अधर्म का लक्षण कहिये ?

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम् ।

तब बालशास्त्रीजी ने कुछ भी उत्तर न दिया ।

तदा बहुभिर्युगपत् पृष्टम्—प्रतिमा शब्दो वेदे नास्ति किमिति ?

फिर वहुत से पण्डितों ने इकट्ठे हल्ला करके पूछा कि वेद में प्रतिमा शब्द है वा नहीं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्दस्त्वस्तीति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि प्रतिमा शब्द तो है ।

तदा तैरुक्तम्—क्वास्तीति ?

फिर उन लोगों ने कहा कि कहां पर है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—सामवेदस्य ब्राह्मणे चेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि सामवेद के ब्राह्मण में है ।

तदा तैरुक्तम्—किं च तद्वचनमिति ?

फिर उन लोगों ने कहा कि वह कौनसा वचन है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—देवतायतनानि कम्पन्ते दैवत-प्रतिमा हसन्तीत्यादीनि ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह है—"देवता के स्थान कम्पायमान और प्रतिमा हँसती है इत्यादि ‡ ।"

तदा तैरुक्तम्—प्रतिमाशब्दस्तु वेदे * वर्तते भवान् कथं खण्डनं करोति ?

फिर उन लोगों ने कहा कि प्रतिमा शब्द तो वेदों में भी है फिर आप कैसे खण्डन करते हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्देनैव पाषाणपूजनादेः प्रामाण्यं न भवति, प्रतिमा शब्दस्यार्थः कर्त्तव्य इति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि प्रतिमा शब्द से पाषाणादि मूर्त्तिपूजनादि का प्रमाण नहीं हो सकता है, इसलिये प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिये इसका क्या अर्थ है ?

तदा तैरुक्तम्—यस्मिन् प्रकरणेऽयं मन्त्रोऽस्ति तस्य कोऽर्थ इति ?

‡ यह वेदवचन नहीं किन्तु सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण का है परन्तु वहां भी यह प्रक्षिप्त है क्योंकि वेदों से विरुद्ध है ।

* अत्रापि तेषामवेदे ब्राह्मणग्रन्थे वेदबुद्धित्वाद् भ्रान्तिरेवास्तीति वेद्यम् ।

तब उन लोगों ने कहा कि जिस प्रकरण में यह मन्त्र है उस प्रकरण का क्या अर्थ है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अथातोद्भुतशान्तिं व्याख्यास्याम इत्युपक्रम्य त्रातारमिन्द्रमित्यादयस्तत्रैव सर्वे मूलमन्त्रा लिखिताः, एतेषां मध्यात् प्रतिमन्त्रेण त्रित्रिसहस्राण्याहुतयः कार्यास्ततो व्याहृतिभिः पञ्चपञ्चाहुतयश्चेति लिखित्वा सामगानं च लिखितम् । अनेनैव कर्म्मणाद्भुतशान्तिर्विहिता । यस्मिन्मन्त्रे प्रतिमाशब्दोऽस्ति स मन्त्रो न मर्त्यलोकविषयोऽपि तु ब्रह्मलोकविषय एव तद्यथा—"स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेति" प्राच्या दिशोद्भुतदर्शनशान्तिमुक्त्वा ततो दक्षिणस्याः पश्चिमाया दिशः शान्तिं कथयित्वा उत्तरस्या दिशः शान्तिरुक्ता, ततो भूमेश्चेति मर्त्यलोकस्य प्रकरणं समाप्यान्तरिक्षस्य शान्तिरुक्ता, ततो दिवश्च शान्तिविधानमुक्तम्, ततः परस्य स्वर्गस्य च नाम ब्रह्मलोकस्यैवेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह अर्थ है—अब अद्भुत शान्ति की व्याख्या करते हैं ऐसा प्रारम्भ करके फिर रक्षा करने के लिये, इन्द्र [त्रातारमिन्द्र] इत्यादि सब मूलमन्त्र वहीं सामवेद के ब्राह्मण में लिखे हैं, इनमें से प्रति मन्त्र करके तीन हज़ार आहुति करनी चाहियें, इस के अनन्तर व्याहृति करके पांच पांच आहुति करनी चाहियें, ऐसा लिख के सामगान भी करना लिखा है । इस क्रम करके अद्भुत शान्ति का विधान

किया है। जिस मन्त्र में प्रतिमा शब्द है सो मन्त्र मृत्युलोक विषयक नहीं किन्तु ब्रह्मलोक विषयक है, सो ऐसा है कि 'जब विघ्नकर्त्ता देवता पूर्वदिशा में वर्त्तमान होवे' इत्यादि मन्त्रों से अद्भुतदर्शन की शान्ति कहकर फिर दक्षिणदिशा, पश्चिमदिशा, और उत्तर दिशा, इसके अनन्तर भूमि की शान्ति कहकर मृत्युलोक का प्रकरण समाप्त कर अन्तरिक्ष की शान्ति कहके, इसके अनन्तर स्वर्गलोक फिर परमस्वर्ग अर्थात् ब्रह्मलोक की शान्ति कही है। इस पर सब चुप रहे।

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—यस्यां यस्यां दिशि या या देवता तस्यास्तस्या देवतायाः शान्तिकरणेन दृष्टविघ्नोपशान्तिर्भवतीति।

फिर बालशास्त्री ने कहा कि जिस जिस दिशा में जो जो देवता है उस उस की शान्ति करने से अद्भुत देखने वालों के विघ्न की शान्ति होती है।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदं तु सत्यं परन्तु विघ्नदर्शयिता कोऽस्तीति?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह सत्य है परन्तु इस प्रकार में विघ्न दिखाने वाला कौन है।

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—इन्द्रियाणि दर्शयितॄणीति।

तब बालशास्त्री ने कहा कि इन्द्रियां दिखाने वाली हैं।

तदा स्वामिनोक्तम्—इन्द्रियाणि तु द्रष्टृणि भवन्ति न तु दर्शयितृणि, परन्तु स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र स शब्दवाच्यः कोऽस्तीति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि इन्द्रियां तो देखने वाली हैं दिखाने वाली नहीं, परन्तु "स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र" इत्यादि मन्त्रों में 'स' शब्द का वाच्यार्थ क्या है ?

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम् ।

तब बालशास्त्रीजी ने कुछ न कहा ।

तदा शिवसहायेन प्रयागस्थेनोक्तम्—अन्तरिक्षादि गमनं शान्तिकरणस्य फलमनेनोच्यते चेति ।

फिर पण्डित शिवसहायजी ने कहा कि अन्तरिक्ष आदि गमन, शान्ति करने से फल इस मन्त्र करके कहा जाता है ।

तदा स्वामिनोक्तम्—भवता तत्प्रकरणं दृष्टं किम् ? दृष्टं चेत्तर्हि कस्यापि मन्त्रस्यार्थं वदेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि आपने वह प्रकरण देखा है तो किसी मन्त्र का अर्थ तो कहिये ?

तदा शिवसहायेन मौनं कृतम् ।

तब शिवसहायजी चुप हो रहे ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदाः कस्माज्जाता इति ?

फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि वेद किससे उत्पन्न हुए हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—वेदा ईश्वराज्जाता इति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कस्मादीश्वराज्जाताः ?

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि किस ईश्वर से ?

किं न्यायशास्त्रोक्ताद्वा योगशास्त्रोक्ताद्वा वेदान्तशास्त्रोक्ताद्वेति ?

क्या न्यायशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से वा योगशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से अथवा वेदान्तशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से ? इत्यादि ।

तदा स्वामिनोक्तम्—ईश्वरा बहवो भवन्ति किमिति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि क्या ईश्वर बहुत से हैं ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—ईश्वरस्त्वेक एव परन्तु वेदाः कीदृग्लक्षणादीश्वराज्जाता इति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर तो एक ही है परन्तु वेद कौन से लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—सच्चिदानन्दलक्षणादीश्वराद्वेदा जाता इति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि सच्चिदानन्द लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कोऽस्ति सम्बन्धः? किं प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावो वा जन्यजनकभावो वा समवायसम्बन्धो वा स्वस्वामिभाव इति तादात्म्यभावो वेति ?

फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर और वेदों से क्या सम्बन्ध है ? क्या प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव वा जन्यजनकभाव अथवा समवायसम्बन्ध वा स्वस्वामिभाव अथवा तादात्म्य सम्बन्ध है ? इत्यादि ।

तदा स्वामिनोक्तम्—कार्यकारणभावः सम्बन्धश्चेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि कार्य्यकारणभाव सम्बन्ध है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—मनो ब्रह्मेत्युपासीत, आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेति यथा प्रतीकोपासनमुक्तं तथा शालिग्रामपूजनमपि ग्राह्यमिति ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि जैसे मन में ब्रह्मबुद्धि और सूर्य्य में ब्रह्मबुद्धि करके प्रतीक उपासना कही हैं वैसे ही शालिग्राम के पूजन का ग्रहण करना चाहिये ।

तदा स्वामिनोक्तम्—यथा मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेत्यादिवचनं वेदेषु * दृश्यते तथा पाषाणादि

---

* इदमपि पण्डितमतानुसारेणोक्तम्, नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम् ।

ब्रह्मेत्युपासीतेति वचनं क्वापि वेदेषु न दृश्यते, पुनः कथं ग्राह्यम्भवेदिति ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि जैसे "मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वचन वेदों † में देखने में आते हैं वैसे "पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वचन वेदादि में नहीं देख पड़ता फिर क्योंकर इस का ग्रहण हो सकता है ?

तदा माधवाचार्येणोक्तम्—'उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते स ँ सृजेथामयं च' इति मन्त्रस्थेन पूर्त्तशब्देन कस्य ग्रहणमिति ?

तब माधवाचार्य्य ने कहा कि "उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते स ँ सृजेथामयञ्च" इति, इस मन्त्र में पूर्त्त शब्द से किसका ग्रहण है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—वापीकूपतडागारामाणामेव नान्यस्येति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि वापी, कूप, तड़ाग और आराम का ग्रहण है ।

तदा माधवाचार्य्येणोक्तम्—पाषाणादिमूर्त्तिपूजनमत्र कथं न गृह्यते चेति ?

† यह भी उन्हीं पण्डितों का मत है स्वामीजी का नहीं क्योंकि स्वामीजी तो ब्राह्मण पुस्तकों को ईश्वरकृत नहीं मानते ।

माधवाचार्य्य ने कहा कि इससे पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का ग्रहण क्यों नहीं होता है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—पूर्त्तशब्दस्तु पूर्त्तिवाची वर्त्तते तस्मान्न कदाचित्पाषाणादिमूर्त्तिपूजनग्रहणं सम्भवति । यदि शङ्कास्ति तर्हि निरुक्तमस्य मन्त्रस्य पश्य ब्राह्मणं चेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि पूर्त्त शब्द पूर्त्ति का वाचक है इससे कदाचित् पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का ग्रहण नहीं हो सकता, यदि शङ्का हो तो इस मन्त्र का निरुक्त और ब्राह्मण देखिये ।

ततो माधवाचार्य्येणोक्तम्—पुराणशब्दो वेदेष्वस्ति न वेति ?

तब माधवाचार्य्य ने कहा कि पुराण शब्द वेदों में है वा नहीं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—पुराणशब्दस्तु बहुषु स्थलेषु वेदेषु दृश्यते परन्तु पुराणशब्देन कदाचिद् ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थानां ग्रहणं न भवति, कुतः ? पुराणशब्दस्तु भूतकालवाच्यस्ति सर्वत्र द्रव्यविशेषणं चेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि पुराण शब्द तो बहुत सी जगह वेदों में है, परन्तु पुराण शब्द से ब्रह्मवैवर्त्तादिक ग्रन्थों का कदाचित् ग्रहण नहीं हो सकता, क्योंकि पुराण शब्द भूतकाल-वाची है और सर्वत्र द्रव्य का विशेषण ही होता है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—"एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्व्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानि" इत्यत्र बृहदारण्यकोपनिषदि पठितस्य सर्वस्य प्रामाण्यं वर्त्तते न वेति ?

फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि बृहदारण्यक उपनिषद् के इस मन्त्र में कि "एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति" यह सब जो पठित है इसका प्रमाण है वा नहीं ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्त्येव प्रामाण्यमिति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा—हां प्रमाण है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—श्लोकस्यापि प्रामाण्यं चेत्तदा सर्वेषां प्रामाण्यमागतमिति ।

फिर विशुद्धानन्दजी ने कहा कि यदि श्लोक का भी प्रमाण है तो सब का प्रमाण आया ।

तदा स्वामिनोक्तम्—सत्यानामेव श्लोकानां प्रामाण्यं नान्येषामिति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि सत्य श्लोकों ही का प्रमाण होता है औरों का नहीं ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमिति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—पुस्तकमानय पश्चाद्विचारः कर्त्तव्य इति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि पुस्तक लाइये तब इसका विचार हो ।

तदा माधवाचार्य्येण वेदस्य* द्वे पत्रे निस्सारिते, अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्त्वेति ।

माधवाचार्य ने वेदों के दो पत्रे ‡ निकाले, और कहा कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है ?

तदा स्वामिनोक्तम्—कीदृशमस्ति वचनं पठ्यतामिति ।

स्वामीजी ने कहा कि कैसा वचन है पढ़िये ।

तदा माधवाचार्य्येण पाठः कृतस्तत्रेदं वचनमस्ति "ब्राह्मणानीतिहासः पुराणानीति" ।

तब माधवाचार्य्य ने यह पढ़ा 'ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति' ।

---

* इदमपि पण्डितानां मतम्, नैव स्वामिन इति वेद्यम् ।

‡ यह भी उन्हीं का मत है स्वामीजी का नहीं, क्योंकि ये गृह्यसूत्र के पत्रे थे ।

तदा स्वामिनोक्तम्--पुराणानि ब्राह्मणानि नाम सनातनानीति विशेषणमिति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यहां पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है अर्थात् पुराने नाम सनातन ब्राह्मण हैं ।

तदा बालशास्त्र्यादिभिरुक्तम्—ब्राह्मणानि नवीनानि भवन्ति किमिति ।

तब बालशास्त्रीजी आदि ने कहा कि ब्राह्मण कोई नवीन भी होते हैं ?

तदा स्वामिनोक्तम्--नवीनानि ब्राह्मणानीति कस्यचिच्छङ्कापि माभूदिति विशेषणार्थः ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि नवीन ब्राह्मण नहीं हैं, परन्तु ऐसी शङ्का भी किसी को न हो इसलिये यहां यह विशेषण कहा है ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—इतिहासशब्दव्यवधानेन कथं विशेषणं भवेदिति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि यहां इतिहास शब्द के व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अयं नियमोऽस्ति किं व्यवधानाद्विशेषणयोगो न भवेत्सन्निधानादेव भवेदिति ?

"अजो नित्यश्शाश्वतोऽयम्पुराणो न' इति दूरस्थस्य देहिनो विशेषणानि गीतायां कथम्भवन्ति ? व्याकरणेऽपि नियमो नास्ति समीपस्थमेव विशेषणं भवेन्न दूरस्थमिति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि क्या ऐसा नियम है कि व्यवधान से विशेषण नहीं होता और अव्यवधान ही में होता है, क्योंकि [गीता के] "अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे" इस श्लोक में दूरस्थ देही का भी क्या विशेषण नहीं है ? और कहीं व्याकरणादि में भी यह नियम नहीं किया है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं दूरस्थ नहीं ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—इतिहासस्यात्र पुराण-शब्दो विशेषणं नास्ति तस्मादितिहासो नवीनो ग्राह्यः किमिति ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि यहां इतिहास का तो पुराण शब्द विशेषण नहीं है, इससे क्या इतिहास नवीन ग्रहण करना चाहिये ।

तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यत्रास्तीतिहासस्य पुराणशब्दो विशेषणं तद्यथा—इतिहासः पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः' इत्युक्तम् ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि और जगह पर इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है—सुनिये "इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः * इत्यादि में कहा है ।

* [छा० उ० प्रपा० ७ ख० १ प्रवाक् ४ में ऐसा पाठ है ।। पृष्ठ १५ पं० ७ में भी इसी प्रकार पढ़िये । सं० ।]

तदा वामनाचार्यादिभिरयं पाठ एव वेदे नास्तीत्युक्तम्।

तब वामनाचार्य आदिकों ने कहा कि वेदों में यह पाठ ही कहीं भी नहीं है।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—यदि वेदेष्वयम्पाठो * न भवेच्चेन्मम पराजयो यद्ययम्पाठो वेदे यथावद्भवेत्तदा भवताम्पराजयश्चेयम्प्रतिज्ञा लेख्येत्युक्तन्तदा सर्वैर्मौनं कृतमिति।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यदि वेद † में यह पाठ न होवे तो हमारा पराजय हो और जो हो तो तुम्हारा पराजय हो यह प्रतिज्ञा लिखो, तब सब चुप हो रहे।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदानीं व्याकरणे कल्मसंज्ञा क्वापि लिखिता न वेति?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि व्याकरण जानने वाले इस पर कहें कि व्याकरण में कहीं कल्मसंज्ञा करी है वा नहीं?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—एकस्मिन् सूत्रे संज्ञा तु न कृता परन्तु महाभाष्यकारेणोपहासः कृत इति।

तब बालशास्त्रीजी ने कहा कि संज्ञा तो नहीं की है परन्तु एक सूत्र में भाष्यकार ने उपहास किया है।

---

* इदमपि तन्मतमनुसृत्योक्तं नेदं स्वामिनो मतमिति वेदितव्यम्।

† यह उन्हीं पण्डितों के मतानुसार कहा है किन्तु स्वामीजी तो छान्दोग्य उपनिषद् को वेद नहीं मानते।

तदा स्वामिनोक्तम्—कस्य सूत्रस्य महाभाष्ये संज्ञा तु न कृतोपहासश्चेत्युदाहरणप्रत्युदाहरणपूर्वकं समाधानं वदेति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि किस सूत्र के महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की और उपहास किया है, यदि जानते हो तो इसके उदाहरण [प्रत्युदाहरण] पूर्वक समाधान कहो ?

बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तमन्येनापि चेति ।

तब बालशास्त्री और औरों ने कुछ भी न कहा ।

तदा माधवाचार्येण द्वे पत्रे वेदस्य * निस्सार्य्य सर्वेषां पण्डितानाम्मध्ये प्रक्षिप्ते, अत्र यज्ञसमाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे पुराणानां पाठं शृणुयादिति लिखितमत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्तम् ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना दयानन्दस्वामिनो हस्ते पत्रे दत्ते ।

माधवाचार्य ने दो पत्रे वेदों ‡ के निकाल कर सब पण्डितों के बीच में रख दिये और कहा कि यहां 'यज्ञ के समाप्त होने पर यजमान दशवें दिन पुराणों का पाठ सुने' ऐसा लिखा है । यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

स्वामीजी ने कहा कि पढ़ो इसमें किस प्रकार का पाठ है ? जब किसी ने पाठ न किया तब विशुद्धानन्दजी ने पत्रे उठा के स्वामीजी की ओर करके कहा कि तुम ही पढ़ो ।

* एते पत्रे तु गृह्यसूत्रस्य भवतामिति ।

‡ पत्रे गृह्यसूत्र के पाठ के थे वेदों के नहीं ।

स्वामीजी ने कहा कि आप ही इसका पाठ कीजिये।

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि मैं ऐनक के विना पाठ नहीं कर सकता, ऐसा कहके वे पत्रे उठाकर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने दयानन्द स्वामीजी के हाथ में दिये।

तदा स्वामी पत्रे द्वे गृहीत्वा पञ्चक्षणमात्रं विचारं कृतवान्। तत्रेदं वचनं वर्त्तते—"दशमे दिवसे यज्ञान्ते पुराण-विद्यावेदः, इत्यस्य श्रवणं यजमानः कुर्य्यादिति"।

इस पर स्वामीजी दोनों पत्रे लेकर विचार करने लगे। [वहां इस प्रकार पाठ था "यज्ञ समाप्ति पर दशवें दिन यजमान पुराणविद्यावेद का श्रवण करे] इस में अनुमान है कि ५ पल व्यतीत हुए होंगे कि—

अस्यायमर्थः—पुराणी चासौ विद्या च पुराणविद्या पुराणविद्येव वेदः पुराणविद्यावेद इति नाम ब्रह्मविद्यैव ग्राह्या, कुतः ? एतदन्यत्रर्ग्वेदादीनां श्रवणमुक्तं न चोपनिषदाम्। तस्मादुपनिषदामेव ग्रहणं नान्येषाम्। पुराणविद्यावेदोऽपि ब्रह्मविद्यैव भवितुमर्हति नान्ये नवीना ब्रह्मवैवर्त्तादयो ग्रन्था-श्चेति। यदि ह्येवं पाठो भवेद् ब्रह्मवैवर्त्तादयोऽष्टादश ग्रन्थाः पुराणानि चेति, क्वाप्येव वेदेषु ‡ पाठो नास्त्येव तस्मात्कदा-चित्तेषां ग्रहणं न भवेदेवेत्यर्थकथनस्येच्छा कृता।

‡ इदमपि तन्मतमेवास्ति न स्वकीय इति।

"पुरानी जो विद्या है उसे पुराणविद्या कहते हैं और जो पुराणविद्या वेद है वही पुराणविद्या वेद कहाता है, इत्यादि से यहां ब्रह्मविद्या ही का ग्रहण है, क्योंकि पूर्व प्रकरण में ऋग्वेदादि चारों वेद आदि का तो श्रवण कहा है परन्तु उपनिषदों का नहीं कहा, इसलिये यहां उपनिषदों का ही ग्रहण है, औरों का नहीं। पुरानी विद्या वेदों ही की ब्रह्मविद्या है, इससे ब्रह्मवैवर्त्तादि नवीन ग्रन्थों का ग्रहण कभी नहीं कर सकते, क्योंकि जो यहां ऐसा पाठ होता कि ब्रह्मवैवर्त्तादि १८ (अठारह) ग्रन्थ पुराण हैं, सो तो वेद में * कहीं ऐसा पाठ नहीं है इसलिये कदाचित् अठारहों का ग्रहण नहीं हो सकता" कि ज्यों यह उत्तर कहना चाहते थे कि—

तदा विशुद्धानन्दस्वामी मम विलम्बो भवतीदानीं गच्छामीत्युक्त्वा गमनायोत्थितोऽभूत्। ततः सर्वे पण्डिता उत्थाय कोलाहलं कृत्वा गताः। एवं च तेषां कोलाहल-मात्रेण सर्वेषां निश्चयो भविष्यति दयानन्दस्वामिनः पराजयो जात इति।

अथात्र बुद्धिमद्भिर्विचारः कर्त्तव्यः कस्य जयो जातः कस्य पराजयश्चेति।

दयानन्दस्वामिनश्चत्वारः पूर्वोक्ताः पूर्वपक्षास्सन्ति। तेषां चतुर्णां प्रामाण्यं नैव वेदेषु निःसृतं पुनस्तस्य

* यह पण्डितों के मतानुसार कहा है यह स्वामीजी का मत नहीं है।

पराजयः कथं भवेत् ? पाषाणादिमूर्तिपूजनरचनादिविधायकं वेदवाक्यं सभायामेतैः सर्वैर्नोक्तम् ।

येषां वेदविरुद्धेषु वेदाप्रसिद्धेषु च पाषाणादिमूर्त्ति-पूजनादिषु शैवशाक्तवैष्णवादिसंप्रदायादिषु रुद्राक्षतुलसी-काष्ठमालाधारणादिषु त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरचनादिषु नवीनेषु ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थेषु च महानाग्रहोऽस्ति तेषामेव पराजयो जात इति तथ्यमेवेति ॥

विशुद्धानन्द स्वामी उठ खड़े हुए और कहा कि हमको विलम्ब होता है हम जाते हैं ।

तब सब के सब उठ खड़े हुए और कोलाहल करते हुए चले गये, इस अभिप्राय से कि लोगों पर विदित हो कि दयानन्द स्वामी का पराजय † हुआ । परन्तु जो दयानन्द स्वामीजी के ४ पूर्वोक्त प्रश्न हैं उनका वेद में तो प्रमाण ही न निकला फिर क्योंकर उनका पराजय हुआ !!

॥ इति ॥

† क्या किसी का भी इस शास्त्रार्थ से ऐसा निश्चय हो सकता है कि स्वामीजी का पराजय और काशीस्थ पण्डितों का विजय हुआ ? किन्तु इस शास्त्रार्थ से यह तो ठीक निश्चय होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का विजय हुआ और काशीस्थों का नहीं क्योंकि स्वामीजी का तो वेदोक्त सत्यमत है उसका विजय क्योंकर न होवे ? काशीस्थ पण्डितों का पुराण और तन्त्रोक्तमत जो पाषाणादि मूर्त्तिपूजादि है उनका पराजय होना कौन रोक सकता है ? यह निश्चय है कि असत्य पक्ष वालों का पराजय और सत्यपक्ष वालों का सर्वदा विजय होता है ॥

समकालीन पत्र पत्रिकाओं में—

काशी शास्त्रार्थ विषयक उल्लेख

सामग्री संग्रहकर्ता एवं सम्पादक—

डा० भवानीलाल भारतीय, एम. ए., पी. एच. डी.

हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट कालेज, अजमेर।

पौराणिक मत तथा मूर्तिपूजा के अप्रतिम दुर्ग काशी की पण्डित मण्डली को शास्त्रार्थ समर में पराजित कर निग्रहस्थान पर ले जाने वाले पुण्य श्लोक महर्षि दयानन्द सरस्वती कार्तिक कृष्णा २ वा ३ संवत् १९२६ वि० तदनुसार २२ वा २३ अक्टूबर १८६९ ई० को काशी पधारे थे। प्रथम उन्होंने गोसांईजी के बाग में निवास किया, पुनः अमेठी के राजा के आनन्द बाग में जो दुर्गाकुण्ड पर है, चले गये। काशी की विद्वन्मण्डली से उनका संसार प्रसिद्ध शास्त्रार्थ कार्तिक शुक्ला द्वादशी १९२६ वि० मंगलवार तदनुसार १६ नवम्बर १८६९ ई० को हुआ। उसी वर्ष (वि० सं० १९२६ वि० में) शास्त्रार्थ का विवरण काशी स्थित मुन्शी हरवंशलाल के लाइट प्रेस में छाप कर प्रकाशित हुआ। यह सम्भवतः केवल संस्कृत में ही था।

वैदिक यंत्रालय काशी की स्थापना माघ शुक्ला २ सं० १९३६ वि० को लक्ष्मीकुण्ड पर महाराज विजयनगराधिपति के स्थान पर हुई। मुन्शी बख्तावरसिंह इसके प्रथम प्रबन्धक थे।

मुन्शीजी ने अपने मासिक पत्र आर्यदर्पण (जो आर्यसमाज का प्रथम मासिक पत्र था) के जनवरी १८८० ई० अंक में काशी शास्त्रार्थ का वह विवरण हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में समानान्तर कालमों में प्रकाशित किया जो आज भी वैदिक यंत्रालय द्वारा प्रकाशित काशी शास्त्रार्थ के संस्कृत पाठ के हिन्दी अनुवाद के रूप में प्रकाशित होता है। इस के प्रारम्भ में मुन्शी बख्तावरसिंह ने भूमिका रूप में लिखा—

"हम उस शास्त्रार्थ को कि जो संवत् १९२६ में स्वामीजी और काशी के पण्डितों में महाराजे काशी नरेश के सामने आनन्द बाग में दुर्गाकुण्ड के समीप हुआ था यहाँ लिखते हैं क्योंकि उसके ठीक ठीक वृत्तान्त को बहुत ही कम लोग जानते हैं। कुछ तो उसको और का और ही समझ गये हैं और कुछ कि जिन्होंने ठीक शास्त्रार्थ को कि जिसको काशी में मुन्शी हरवंशलाल ने लाइट प्रेस में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया था उसको देखा ही नहीं केवल उसी को कि जो 'दयानन्द पराभूति' के नाम से काशी नरेश के यंत्रालय में कुछ का कुछ छापा गया है और जिसमें कि स्वामीजी की बातों को उनके अभिप्राय से बहुत उल्टा प्रकाशित कर दिया है, उसी को ठीक शास्त्रार्थ समझ गये हैं। जब ये लोग स्वामीजी के व्याख्यान सुनते हैं और उनके रचित पुस्तकों को देखते हैं तो उसको इन से उलटा ही पाकर भ्रम में पड़ जाते हैं और एक बड़ी भारी बात भ्रम में पड़ने की यह भी हुई है कि वह शास्त्रार्थ केवल संस्कृत में ही हुआ था कि जिसको बहुत ही कम लोग समझ सकते थे। तब तो इस समय के बड़े भाग्य से आशा समझ कर लोगों ने कुछ का कुछ ही लोगों पर

विदित करके अपनी जय प्रसिद्ध कर दी, अब हम इन सब भ्रम की बातों के नाश के लिये उस शास्त्रार्थ को कि जिसको मुन्शी हरिवंशलाल ने संवत् १६२६ में छपवाया था शुद्ध करके और उस पर कितने एक नोट लिखके यहाँ आर्यभाषा और उर्दू में ठीक ठीक प्रकाशित करते हैं। आशा है कि सब सज्जन मनुष्य पक्षपात रहित होकर उसको देखेंगे और स्वामीजी और काशी के पण्डितों की व्यवस्था को ठीक ठीक जान लेवेंगे।"

इस प्रारम्भिक टिप्पणी के पश्चात् उक्त अंक के पृ० १० से लेकर पृ० २० पर्यन्त काशी शास्त्रार्थ का भाषार्थ हिन्दी और उर्दू में छापा है। पृ० २१ से २४ पर्यन्त 'एडीटोरियल नोट्स' शीर्षक एक टिप्पणी और है, यह किञ्चित परिवर्तन के साथ वैदिक यंत्रालय से प्रकाशित काशी शास्त्रार्थ की 'भूमिका' के रूप में ही छपती आ रही है। मुन्शी बख्तावरसिंह ही इस टिप्पणी के लेखक थे और वैदिक यंत्रालय वाले संस्करणों में इस भूमिका के अन्त में जो 'प्रबन्धकर्ता वैदिक यंत्रालय' छापता है यह उक्त मुन्शीजी का ही सूचक है।

बंगाल के सुप्रसिद्ध वैदिकविद्वान् पं० सत्यव्रत सामश्रमी इस शास्त्रार्थ में उपस्थित ही नहीं थे, अपितु दोनों पक्षों की ओर से उन्हें लेखक चुना गया था, यह उनके द्वारा रचित ऐतरेयालोचन' ग्रन्थ से ज्ञात होता है। सामश्रमीजी ने इस शास्त्रार्थ का

१ "परमहो काश्यामानन्दोद्यान विचारे यत्र वयमास्म मध्यस्थाः विशेषतो वादि प्रतिवादिवचसामनुलेखनेऽहमेक एवोभयपक्षतो नियुक्तः" ऐतरेयालोचनम् पृ० १३७ ॥

विवरण अपनी संस्कृत पत्रिका 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' जिसका अंग्रेजी नाम The Hindu Commentator था, के संख्या २८, दिसम्बर १८६९ (वि० सं० १९२६) के अंक में प्रकाशित किया था। पं० भीमसेन शर्मा के जामाता पं० सत्यव्रत शर्मा, द्विवेदी ने श्री महाराज की एक जीवनी 'श्री १०८ महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का जीवनचरितम्' शीर्षक १९०३ ई० में वेद प्रकाश यंत्रालय इटावा से प्रकाशित की। इसके पृ० १३७-१४० पर प्रत्नकम्रनन्दिनी में प्रकाशित काशी शास्त्रार्थ के विवरण को संक्षिप्त रूप से उद्धृत किया गया है। भाषानुवाद सहित उक्त विवरण इस प्रकार है—

दयानन्दो नाम साधुः सद्धर्माविर्भावेता सद्धर्म परिलोपनेऽहंकृतसङ्कल्पः।

अनु० दयानन्द सरस्वती स्वामी एक साधु हैं, जिन्होंने सत्यधर्म प्रचार द्वारा असत् निवारण का बीड़ा उठाया है।

स्वामी दयानन्द— स्वर्गादौ इन्द्रादयो देवाः सन्ति न वा ?

अनु० स्वर्ग में इन्द्रादि देव हैं या नहीं।

विशुद्धानन्द स्वामी—मंत्रमयी देवताः। [महाराज भ्रूकुञ्चनम्[1]]

---

१ "जब विशुद्धानन्दजी ने केवल मन्त्र मात्र ही को देवता बता दिया तो महाराजे काशी नरेश ने समझा होगा कि प्रतिमा पूजन का तो खण्डन अपनी ही ओर से हो गया। "आर्यदर्पण फरवरी १८८० पृ० ४५ की पाद टिप्पणी।

अनु० वेदोक्त मंत्र ही देवता है।

स्वा० द०—कथमुपासना ?

अनु० फिर उपासना किस प्रकार होगी।

वि०—प्रतीकोपासना, शालिग्रामादौ।[1]

अनु० शालिग्राम आदि मूर्तियों में प्रतीक रूप से।

द०—क्व वेदेलिखितमिदम्।

अनु० ऐसा वेद में कहाँ लिखा है ?

वि०—एकस्य हि सामवेदस्यैव सहस्रशाखाः, भवता सर्वा एव दृष्टाः ?[2]

अनु० एक सामवेद की सहस्र शाखायें हैं, क्या आपने सब देखी हैं ?

द०—शृणु शृणु सहस्रवर्त्मासामवेदः सहस्रमार्गकः—इतितस्यार्थः संहिता तु सर्वत्र शाखासु एका एव।

अनु० सुनो, सहस्र शाखाओं में सहस्र प्रकार के व्याख्यान किये हैं, परन्तु सब शाखाओं की संहिता तो एक ही है।

१. पहले तो वेदों के मन्त्र मात्र ही की देवता बतलाया अब शालिग्राम आदि को देवता कहने लगे। अच्छा गड़बड़ है। किसको सत्य मानें।

२. जब प्रश्न का उत्तर न दे सके तो प्रकरणान्तर इस बात पर दौड़ गये। इससे इनका अभिप्राय यह जान पड़ता है कि मुख न बन्द हो, जो चाहो अन्ड बन्ड करते रहो।

वि०—स एव ईश्वरः ।[1]

अनु० वही ईश्वर है।

द०—[उपहसन्] हेः ! स—ए—व—ई—श्वरः । अल-मनर्थविचारणेन यत्प्रकरणं तद्वद ।

अनु० (हंस कर) हाँ, वही ईश्वर है, जिस बात का यहाँ सम्बन्ध नहीं, उसका वर्णन करना व्यर्थ है, जो प्रकरण है, वह बोलिये।

वि०—[पृष्ठे दत्त वामहस्तः][2] अरे बाबा, तू अभी कुछ पढ़ा नहीं कुछ दिन पढ़ ।

---

१. जहाँ कि वेदों के विषय में विशुद्धानन्दजी ने यह पूछा, था कि वेद ईश्वर का क्या सम्बन्ध है उस पर स्वामीजी ने कहा कि कार्य कारण सम्बन्ध है। फिर विशुद्धानन्दजो ने कहा कि कार्य कारण सम्बन्ध से वेद नहीं रह सकते । इस पर स्वामीजी ने कहा कि परमेश्वर में जो कुछ भी नहीं रह सकता तो आकाश से किसी वस्तु का सम्बन्ध कैसे हो सकेगा यह कहो ? तो देखिये विशुद्धानन्दजी आकाश ही को ईश्वर बताने लगे। धन्य है ऐसी विचित्र पण्डिताई को । जब पण्डित लोग आकाश को ईश्वर कहें तो फिर अपण्डित ईंट पत्थरों को क्यों न ईश्वर समझें ?

२. यह लो, शास्त्रार्थ तो संस्कृत में हो रहा था, भाषा पर जा कूदे । सभा के बीच ऐसी अयोग्य बात कहना और ऐसा काम अविद्वानों के सदृश करना पण्डितों का कर्म नहीं होता । यहाँ स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्वामी विशुद्धानन्दजी से जब उत्तर न बन पड़ा तो क्रोध में आकर ऐसा अनुचित काम किया ।

अनु० विशुद्धानन्द ने श्रीमहाराज की पीठ पर हाथ कर यह हिन्दी वाक्य कहा।

द०—[हस्तं बलाद् दूरीकृत्य] भवतासर्वं पठितम्।

अनु० (उनके हाथ को बलात् हटा कर) आपने सब कुछ पढ़ लिया है ?

वि०—[प्रहस्य] सर्वम्।

अनु० (हंस कर) हाँ, सब पढ़ लिया है।

द०—[पुनः प्रत्युपदिश्य] व्याकरणमपि।

अनु० (उनकी ओर मुख करके) क्या व्याकरण भी ?

वि०—तदपि।

अनु० हाँ, वह भी।

द०—[रक्तेक्षणः] कल्मसंज्ञा कस्य ? [गर्जयन्] वद वद !

अनु० (आँखे लाल कर) कल्म संज्ञा किसकी है ? (गरज कर) कहो कहो।

पं० बालशास्त्री[1]—एकस्मिन् सूत्रे संज्ञा तु न कृता किन्तु महाभाष्यकारेणोपहास्यं कृतमिति।[2]

---

१. जब व्याकरण जानने की प्रतिज्ञा कर ली तो फिर क्यों आप ही उत्तर न दिया ? उस समय स्वामी विशुद्धानन्दजी का चुप रह जाना और स्वामीजी के प्रश्न के उत्तर को पं० बालशास्त्रीजी का उद्यत होना पाठकगण ही विचारें कि क्या प्रसिद्ध करता है।

२. ये वाक्य वै. यं. से प्रकाशित काशी शास्त्रार्थ के संस्कृत भाग में भी विद्यमान हैं।—टिप्पणीकर्ता।

अनु० एक सूत्र में संज्ञा तो नहीं की है किन्तु महाभाष्यकार ने उपहास किया है।

द०—कस्य सूत्रस्य महाभाष्ये संज्ञा तु न कृता उपहासश्चेदुदाहरणपूर्वकं समाधानं वदेति ।

अनु० किस सूत्र की महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की, उपहास किया है, उदाहरण पूर्वक समाधान कीजिये।

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तमन्येनापि चेति ।

अनु० तब बालशास्त्रीजी ने कुछ नहीं कहा और न किसी अन्य ने ही कुछ उत्तर दिया।

आर्यदर्पण के सम्पादक ने 'एडीटोरियल नोट्स' शीर्षक टिप्पणी दी है जिसका सार यह है कि विशुद्धानन्द, बालशास्त्री आदि काशी के पण्डित एकान्त में सब यही कहते हैं कि जो कुछ स्वामीजी कहते हैं, है सब सत्य, परन्तु क्या करें जो हम भी ऐसा ही कहने लगें तो सब लोग हमको छोड़ दें, हम से वैर भाव रखने लगें, फिर हम लोगों की जीविका कैसे चले आदि।

ब्रह्मसमाज के द्वितीय नेता श्री देवेन्द्र नाथ ठाकुर द्वारा संस्थापित तथा श्री अक्षय कुमार दत्त द्वारा सम्पादित तत्व बोधिनी पत्रिका (जेष्ठ संवत् १७६४ बंगाब्द) ने शास्त्रार्थ के बारे में लिखा वर्त्तमानी काशी नरेश के उद्योग से नाना देशों के पण्डितगणों ने उक्तमत खण्डन करने के अर्थ विचार किया जैसा कि धर्म विचार पुस्तक के पढ़ने से विदित होता है कि "वेद से प्रतिमा पूजन व्यवस्था देकर कोई पण्डित स्वामी दयानन्दजी को नहीं हरा सका, इसलिये स्वामीजी को बड़ा वेदवेत्ता समझना चाहिये।"

रुहेलखण्ड समाचार ने नवम्बर १८६६ के अंक में लिखा—"दयानन्द सरस्वती स्वामी......काशी के पण्डितों को उन्होंने जीत लिया और काशी के पण्डितों ने झूठ ही अपनी जय की धूम मचा दी।" ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका लाहौर अप्रैल १८७० ई० ने लिखा—"शास्त्रार्थ में व्यर्थ वितण्डावाद बहुत हुआ और इसमें संदेह नहीं कि प्रतिमा पूजन वेदों से पण्डित सिद्ध न कर सके।"

काशी शास्त्रार्थ भारत के धर्म क्षेत्र में एक अद्भुत क्रान्ति उत्पन्न करने वाला महा समर था जिसमें अविचल ईश्वर-विश्वासी दयानन्द एकमेव परमात्मा के विश्वास पर ही विचार-संग्राम में कूदा था। "शास्त्रार्थ प्रारम्भ होने से पूर्व श्रीमहाराज ने क्षौर कराया, स्नान किया और अपने सुन्दर शरीर पर मृतिका लगाई पुनः पद्मासनस्थ होकर थोड़ी देर परमेश्वर का ध्यान किया और फिर भोजन किया था।" यह विवरण महाराज के जीवन चरित्र में उपलब्ध होता है। ईश्वर का ध्यान किये जाने की बात विशेष-रूप से उल्लेखनीय है। पौराणिकों के आसन्न दुर्व्यवहार की आशंका से भयभीत अपने भक्त बलदेव को महाराज ने इन्हीं शब्दों में आश्वस्त किया था—ऐ बलदेव, क्या चिन्ता है, एक मैं हूँ, एक ईश्वर है, एक धर्म है और कौन है ?

काशी शास्त्रार्थ की इस प्रथम शताब्दी के स्मरणीय पर्व पर काशी के तत्कालीन कोतवाल रघुनाथ प्रसाद को आर्यसमाज अपनी अशेष श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है जिसने श्रीमहाराज के लोक कल्याण हेतु समर्पित मूल्यवान शरीर की रक्षा नहीं की

अपितु जो महाराज के गौरव वर्चस्व के प्रति अत्यन्त प्रणतभाव रखता था। साथ ही स्वामीजी के हितेच्छु पं० ज्योतिस्वरूप उदासी, साधु जवाहिरदास उदासी तथा उन अज्ञातनामा परमहंसों का भी आर्य जगत् कृतज्ञ है जो यद्यपि साक्षात् रूप से मूर्तिपूजा का खण्डन करने को उद्यत नहीं थे परन्तु जो श्रीमहाराज को अपने ही वर्ग का संन्यासी समझ कर उनके प्रति अपूर्व सहानुभूति रखते थे।

काशी में जहाँ यह शास्त्र विचार आज से १०० वर्ष पूर्व सम्पन्न हुआ वह स्थान अमेठी के राजा के अधिकार में था। स्व. प्रो० महेशप्रसादजी मौलवी, आलिम फाजिल की प्रेरणा से अमेठी के आर्य नरेश राजा रणञ्जयसिंहजी ने उस स्थान पर एक शिला लेख लगवा दिया है जिस पर निम्न श्लोक अंकित हैं।

शास्त्र-द्वन्द्वांक चन्द्रेऽब्दे वैक्रमे कार्तिके सिते।
भौमे भास्वात्तिथौ दिव्ये मूर्तिपूजा विनिर्णये ॥
अमेठ्यानन्द बागेऽस्मिन् काशिराज सभापतौ।
जनौघे विपुले वादः प्रवृत्तः श्रुतितत्परः ॥
विशुद्धानन्द सुप्रज्ञैर्बालशास्त्र्यादिभिर्बुधैः।
शास्त्रार्थमकरोत्साकं दयानन्दो यतिर्महान् ॥
भगवान् बख्शभूपाल वचनात्तत्सुतः सुधीः।
अलेखयच्छिलालेखं श्रीमान् राजा रणंजयः ॥